**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232**
**Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.hindijournal.com**
**Volume 4; Issue 6; November 2018; Page No. 10-12**

# छत्तीसगढ़ की नृत्यकला और उसका वैशिष्ट्य

**यास्मीन सिंह**
Ph.D. Scholar, Raja Mansingh Tomar Music & Arts University, Gwalior, Madhya Pradesh, India

**सारांश**
छत्तीसगढ़ में दो प्रकार के नृत्य प्रचलित रहे हैं– लोक नृत्य और शास्त्रीय नृत्य। छत्तीसगढ़ में निवास करने वाली विविध जातियों व समुदायों के द्वारा लोकनृत्य करने की परम्परा रही है, जो विभिन्न अवसरों पर किये जाते हैं। यह गौरव का विषय है, कि प्राचीन छत्तीसगढ़ के दो रजवाड़े कथक नृत्य के क्षेत्र में घरानेदार (गुरु शिष्य परम्परा) तथा आधुनिक संस्थागत शिक्षा पद्धति के लिये प्रसिद्ध हुए। यह प्रसिद्धि न केवल भारत तक ही सीमित रही है, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर भी स्थापित हुई।

**मूल शब्द :** छत्तीसगढ़ का लोक नृत्य, नृत्यकला, कथक नृत्य, घरानेदार शिक्षण प्रणाली, संस्थागत शिक्षण प्रणाली, तुलनात्मक अध्ययन।

## प्रस्तावना

छत्तीसगढ़ में दो प्रकार के नृत्य प्रचलित रहे हैं– लोक नृत्य और शास्त्रीय नृत्य। सामान्य दृष्टि से देखा जाए, तो नृत्य का वह स्वरूप जो शास्त्रबद्ध हो उसे विद्वानों ने शास्त्रीय नृत्य कहा। इस नृत्य के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनों ही पक्ष पूर्णतः शास्त्र एवं ग्रंथों, जैसे नाट्यशास्त्र, अभिनयदर्पण आदि पर आधारित होते हैं। वहीं दूसरी वह नृत्य जो शास्त्रीय बंधन से मुक्त हो, उन्मुक्त हो, स्वतंत्र हो और सामान्यजन द्वारा प्रयोग किया जाये, उसे 'लोक–नृत्य' कहा जाता है। लोक–नृत्य का कोई भी लिखित साहित्य या शास्त्र नहीं है। लोक में प्रचलित नृत्यादि कलाओं के मूल आधार में प्रायः मौखिक परम्परा तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करने की परम्परा रही है। छत्तीसगढ़ी, लिखित साहित्य की अपेक्षा अलिखित अथवा मौखिक साहित्य के रूप में अधिक समृद्ध है। यद्यपि इस प्रकार के साहित्य को भी संग्रहकर्त्ताओं ने लिपिबद्ध करके प्रकाशित कराया है, परन्तु फिर भी छत्तीसगढ़ी के पास अलिखित या मौखिक साहित्य का अपार भंडार है।'[1]

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में वैदिक और लौकिक कला का उल्लेख प्राप्त होता है। वेदों एवं पुराणों में कला के जिस पक्ष को 'वैदिक' कहा गया है, उसके प्रयोगकर्त्ताओं में देवी–देवता, गन्धर्व एवं अप्सराओं का उल्लेख है। वहीं, लौकिक कला से आशय जनमानस द्वारा प्रयुक्त कला से रहा है। संभव है, कि यही वेद–पुराणकालीन 'लौकिक' नृत्य कला का ही एक पक्ष कालान्तर में शास्त्रीय सीमाओं में बंधकर 'शास्त्रीय' हो गया हो। जनमानस की सुखात्मक अनुभूतियों और धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति लोक नृत्य के माध्यम से पूर्ण होती है और यह पूर्णतः प्रकृति से भी प्रभावित रही है। 'प्रकृति की प्रेरणा एवं सहायता से उसने धीरे–धीरे सीखना प्रारंभ किया। उसे हर्ष, सुख एवं संतोष की अनुभूति का सुदीर्घ अनुभव हुआ। इसी अनुभूति के माध्यम से उसने नर्तन विधा को जन्म दिया, जो कालान्तर में लोकनृत्य के रूप में मानव की एक धरोहर स्थापित हुई तथा लोक जीवन का अभिन्न अंग बन गई। एक आदिम लोककथा के अनुसार नृत्य की उत्पत्ति ऐसा माना गया है– 'मोर और मोरनी को हर्षोल्लास के आत्मप्रदर्शन के रूप में नृत्य करते हुए देखकर मनुष्य ने नाचना सीखा। लोकनृत्य में वेशभूषा, कलगी और अन्य–श्रृंगार भी मोर की रंगीन काया से मानव ने ग्रहण किया है।''[2]

## लोक नृत्य

छत्तीसगढ़ में निवास करने वाली विविध जातियों व समुदायों के द्वारा लोकनृत्य करने की परम्परा रही है, जो विभिन्न अवसरों पर किये जाते हैं। छत्तीसगढ़ में किये जाने वाले लोक नृत्य की अपनी ही विशेषता रही है। यहाँ लोक नृत्यों में से कुछ नृत्य केवल पुरुषों द्वारा किये जाते हैं, तो कुछ नृत्यों में केवल स्त्रियाँ ही संलग्न होती हैं। वहीं कुछ नृत्य जाति विशेष से संबंधित होते हैं, तो कुछ नृत्यों में पुरुष और स्त्री दोनों की सहभागिता होती है। इसी प्रकार कुछ नृत्य विशेष अवसरों पर भी होते हैं, जिनका धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व है। 'यहाँ आदिवासियों का नृत्य सरहुल, मारियों का ककसार, परजा का परब, उरांवों का डोमकच, बैगा और गोड़ों का करमा के अलावा डंडा, सुवा आदि लोक नृत्य प्रमुख है। यदुवंशियों का राउत नृत्य और सतनामियों का पंथी नृत्य आज छत्तीसगढ़ वासियों के बीच बहुत लोकप्रिय है। छत्तीसगढ़ के लोक नृत्यों में बहुत कुछ समानता होती है। ये नृत्य मात्र मनोरंजन के साधन नहीं है, बल्कि जातीय नृत्य, धार्मिक अनुष्ठान और ग्रामीण उल्लास के अंग भी हैं। देव–पितरों की पूजा–अर्चना के बाद लोक जीवन प्रकृति के सहचर्य के साथ घुल–मिल जाता है। यहाँ प्रकृति के अनुरूप ही ऋतु परिवर्तन के साथ लोक नृत्य अलग–अलग शैलियों में विकसित हुआ। यहाँ के लोक नृत्यों मे मांदर, झांझ, मंजिरा और डंडा प्रमुख रूप से प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार मयूर के पंख, सुअर के सिर्से, शेर के नाखून, गूज, कौड़ी और गुरियों की माला इनके प्रमुख आभूषण हैं।'[3]

इस प्रकार छत्तीसगढ़ में मानव जीवन की प्रायः प्रत्येक सुखात्मक क्षणों के साथ एक नृत्य करने की पुरातन परम्परा रही है। विशेष उल्लेखनीय है, कि ग्राम्य जीवन में प्रचलित इन नृत्यों को सिखाया नहीं जाता है, वरन् ग्रामीण जन अपनी परम्परा, संस्कृति तथा रीति–रिवाज के अनुरूप धीरे–धीरे यह नृत्य प्रारंभ कर देते हैं। शरीफ मोहम्मद लिखते हैं, कि – 'लोकनृत्यों को सिखाने के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं होती है। गाँव का समाज अपने आप ही सीखता–सिखाता रहता है। नाचते हुए दल को देखकर

बाल समाज के मन में अपने आप ही इच्छा उत्पन्न होती है। वे नर्तकों की भीड़ में घुस जाते हैं, निरुत्साह नहीं होते, नाचते जाते हैं तथा एक समय आता है, जब कुशल नर्तक बन जाते हैं। लोकनृत्यों में समय सीमा का कोई बन्धन नहीं होता। कोई भी लोकनृत्य कई घण्टों तक चल सकता है, या कुछ ही पल में समाप्त हो सकता है। लोकनृत्य भौगोलिक परिस्थिति के अनुरूप होते हैं। जिस स्थान की प्रकृतिक छटा होती है, लोकनृत्यों की रचना, चाल, प्रकृति, गति, परिधि, सौन्दर्य आदि भी उसी के समान होती है। सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं के अनुसार लोकनृत्यों में नामकरण एवं प्रकार होते हैं, जो जातीय और क्षेत्रीय आधार पर निश्चित हैं।'[4]

छत्तीसगढ़ के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न नृत्य किये जाते हैं, जैसे रायपुर, दुर्ग, राजनांदगाँव एवं बिलासपुर जिलों के करमा, सुवा, हिरकी, गौरा पूजा, छेरछेरा, राउत, रामधुन, मूसल, डंडा बिलापुर, कमार, गौरिया और चंदैनी आदि नृत्य उल्लेखनीय हैं। वहीं रायगढ़ और सरगुजा जिलों में करमजितिया, सरहुल, टुन्टा, ढेलापिसना, लुंडकी, देशवाणी, सुवा तथा कोरवा आदि नृत्य ग्रामीण, आदिवासी एवं अन्य जनजातियों द्वारा विशेष रूप से किये जाते हैं। बस्तर क्षेत्र में चैतपरन, परजा, गवर, काकसार, घोटुल मुरिया, रेला, रीलो, छेरका आदि नृत्य विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे हैं।

जैसा कि पूर्व में कहा गया है, कि शास्त्रों पर आधारित नृत्य शास्त्रीय नृत्य श्रेणी में व्यवस्थित किया गया है। छत्तीगसगढ़ में लोक कलाओं के साथ–साथ विभिन्न शास्त्रीय कलाओं का भी प्रर्याप्त प्रचार–प्रसार रहा है, जिसमें कथक नृत्य का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

## कथक का रायगढ़ घराना

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सामाजिक स्तर पर बीसवीं शताब्दी से पूर्व किसी प्रकार के शास्त्रीय नृत्यों के प्रमाण लिखित रूप में प्राप्त नहीं होते, किन्तु 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और मध्य में रायगढ़ रियासत में शास्त्रीय नृत्य कथक का पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होता है। यहाँ के तत्कालीन राजा चक्रधर सिंह कला, संगीत, साहित्य के साथ–साथ नृत्य में विशेष रूप से रुचि लिया करते थे। राजा साहब ने उस समय कथक नृत्य को आश्रय प्रदान किया, जब राजनीतिक परिस्थितियों के कारण कलाकारों के जीविकोपार्जन की समस्या विकराल रूप ले रही थी। वर्तमान में रायगढ़ घराना अपनी विशिष्ट शैली और राजा साहब की अनेकानेक रचनाओं के फलस्वरूप ख्याति अर्जित कर चुका है। राजा साहब ने पूर्व घरानों में संगीत को छिपाकर रखने की धारणा के विपरीत स्थानीय व लोक–कलाकारों को कथक नृत्य की शिक्षा प्रदान कर कथक नृत्य के रायगढ़ घराने की स्थापना की। राजा साहब ने स्वयं लोक कलाकारों को कथक नृत्य की विधिवत शिक्षा प्रदान करने के साथ–साथ देश के प्रख्यात नर्तकों को अपने दरबार में आमंत्रित कर, उनसे भी इन लोक कलाकारों को कथक की शिक्षा दिलवायी। राजा चक्रधर सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। संगीत व नृत्य के अतिरिक्त साहित्य के क्षेत्र में उपन्यासकार, कवि व उर्दू शायर के रूप में भी वे काफ़ी विख्यात् रहे। तबला और पखावज में भी उन्हें काफ़ी रुचि थी। वास्तव में, संगीत उन्हें पैतृक सम्पदा के रूप में प्राप्त हुआ। उनके पिता राजा भूपदेव सिंह संगीत के पारखी थे तथा देश भर के विख्यात् संगीतज्ञों का उनके दरबार में सदैव आना–जाना लगा रहता था। साथ–ही–साथ राजा चक्रधर सिंह के दो चाचा पीललाल तथा लाल नारायण सिंह से भी चक्रधर सिंह जी को संगीत की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त हुई। राजा चक्रधर सिंह ने कत्थक नृत्य की शिक्षा हनुमान प्रसाद जी एवं शिव नारायण जी से प्राप्त की, साथ ही साथ वे तबले और पखावज की शिक्षा भी प्राप्त कर रहे थे। जैसे–जैसे नन्हें राजा की आयु बढ़ती गई वैसे–वैसे उनका संगीत और नृत्य के प्रति अनुराग भी चरम पर पहुँच गया।

रायगढ़ दरबार में नित्यप्रति नृत्य व संगीत की सभायें होती थीं, जिसमें देशभर के नामी कलाकार भाग लिया करते। उस युग का शायद ही कोई कलाकार होगा, जो रायगढ़ न आया हो और उसे राजा चक्रधर सिंह जी के द्वारा सम्मानित न किया गया हो। राजा चक्रधर सिंह नृत्य, लास्य (भाव प्रदर्शन), गायन तथा वादन बख़ूबी समझते थे, तथा संगीत की इन चारों धाराओं को वे समानता से महत्त्व देते थे। "उनके दरबार में पंडित जयलाल, श्री शिव नारायण, गुरु मोहनलाल, श्री सोहनलाल, श्री अच्छन महाराज, उ.अमज़द ख़ाँ थिरकवा आदि श्रेष्ठ कलाकार थे।"[5] यही वजह थी कि इन सभी श्रेष्ठ गुरुओं के सान्निध्य में राजा चक्रधर सिंह स्वयं एक श्रेष्ठ और कुशल गायक, वादक और नर्तक बन गये थे। वे स्वयं तबला बजाते और नर्तकों को उनके अनुसार नाचना पड़ता। आवश्यकता पड़ने पर वे स्वयं नृत्य की शिक्षा देकर अपना मनोभाव स्पष्ट करते थे। बाद में वहीं परम्परा रायगढ़ की शैली के रूप में लोकप्रिय हुई और कथक नृत्य के विकास में एक नया अध्याय जुड़ा।"[6]

चक्रधर सिंह सदैव नामी संगीतज्ञों और गुणीजनों से सतत् सम्पर्क में रहते थे, जिसके फलस्वरूप राजा साहब ने दो अति महत्त्वपूर्ण कार्य किये, प्रथम यह कि – उन्होंने संगीत संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की और दूसरा अपने रायगढ़ के प्रतिभाशाली युवकों को इन गुणीजनों से प्रशिक्षित करवाया। राजा साहब द्वारा रचित ग्रंथों में "नर्तन सर्वस्वम्", "तालतोयनिधि", "रागरत्न मंजूषा", "मुरजपरणपुष्पाकर" आदि ग्रंथ बहुत महत्त्वपूर्ण रहे। इन ग्रंथों की रचना कर राजा साहब ने कथक नृत्य को सैद्धान्तिक रूप से भी समृद्ध बनाया। भारत में संभवतः अन्य किसी भी शास्त्रीय नृत्य का अपना कोई विशिष्ट ग्रंथ नहीं है और सभी शास्त्रीय नृत्य (कथक नृत्य सहित) भरतादि आचार्यों द्वारा लिखे गये प्राचीन ग्रंथों पर ही निर्भर करते हैं।

राजा साहब नृत्य व संगीत के क्षेत्र में नित नये–नये प्रयोग किया करते थे और बाद में इन्हीं प्रयोगों को ग्रंथ का रूप दे दिया। "राजा चक्रधर सिंह के कथक नृत्य को योगदान के संबंध में यह कहना आवश्यक है कि उन्होंने इस कला को सुरक्षित रखने के लिए 'नर्तन सर्वस्वम्' नामक महान ग्रंथ की रचना की।"[7] राजा चक्रधर सिंह ने कथक नृत्य के पोषण और प्रचार के साथ ग्रंथों की भी रचना की। वर्तमान में राजा साहब द्वारा स्थापित इसी कथक नृत्य परम्परा को देश–विदेश में 'रायगढ़ घराना' के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

वर्तमान में घराने के परम्परागत एवं वरिष्ठ नर्तकों में पं.रामलालजी, दादूलाल, भूपेन्द्र बरेठ, मीना सोन, डॉ. भगवानदास माणिक महंत, डॉ.मोहिनी माणिक महंत, पं.राममूर्ति वैष्णव, पं.सुनील वैष्णव, बासंती वैष्णव, स्वप्निल कर्महे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

## संस्थागत शिक्षण प्रणाली

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध की समयावधि में भारत में संस्थागत शिक्षण प्रणाली का सूत्रपात हुआ, जो लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति से प्रभावित था। विष्णुनारायण भातखण्डे और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे संगीत प्रेमियों ने मैकाले की शिक्षा नीति में आवश्यक संशोधन कर अन्य विषयों की ही भाँति संगीत शिक्षा को भी संस्थागत शिक्षण प्रणाली के अंतर्गत स्थापित करने की पहल की और धीरे–धीरे देश के प्रमुख शहरों में संगीत शिक्षण की कुछ संस्थायें भी शुरु की गईं। इन संस्थाओं में गायन और वादन की शिक्षा के प्रमाण तो प्राप्त होते हैं, किन्तु कथक नृत्य शिक्षा हेतु किसी संस्था का उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

यह नृत्य अब भी घरानों तक ही सीमित था तथा घरानों में वंश परम्परा और शिष्य परम्परा के माध्यम से फल–फूल रहा था।

छत्तीसगढ़ के खैरागढ़ रियासत में स्वतंत्रता के पश्चात् इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। इस विश्वविद्यालय की स्थापना यहाँ के अन्तिम रियासत कालीन शासक राजा वीरेन्द्र बहादुर सिंह, रानी पद्मावती द्वारा की गई। इसमें तत्कालीन मध्यप्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री पं.रविशंकर शुक्ल की भी महति भूमिका थी। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार रानी पद्मादेवी स्वयं संगीतकला में प्रवीण थीं, स्थानीय वीरेश्वर महादेव मंदिर में नियमित रूप से भजन किया करती थीं। ढाई वर्ष की आयु में दिवंगत पुत्री इन्दिरा के नाम से रानी साहिबा ने संगीत हेतु संस्थान प्रारंभ करने का मन बनाया इस संस्थान का नाम 'श्री इन्दिरा संगीत महाविद्यालय' रखा, जो समयान्तराल के पश्चात् 'इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' के रूप में स्थापित और प्रसिद्ध हुआ। विश्वविद्यालय में गायन, वादन, लोकनृत्य और शास्त्रीय नृत्यों को पृथक्–पृथक् सिखाये जाने की व्यवस्था भी की गई। इस संबंध में यह तथ्य प्रचलित है, कि खैरागढ़ स्थित इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय अपने स्थापना काल के दौरान दक्षिण एशिया का प्रथम ललित कलाओं को समर्पित विश्वविद्यालय था, वहीं कथक नृत्य की संस्थागत शिक्षा प्रणाली का प्रार्दुभाव भी इसी विश्वविद्यालय से प्रारंभ हुआ।

वर्तमान में इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ से अनेक शासकीय, अर्धशासकीय एवं निजी संस्थायें सम्बद्ध हैं तथा कथक नृत्य एवं लोक नृत्य सहित अन्य ललित कलाओं की संस्थागत शिक्षण पद्धति के अंतर्गत कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय में अन्य संगीतादि विषयों के साथ–साथ कथक नृत्य एवं लोक नृत्य की स्नातक, स्नात्कोत्तर, एम.फ़िल. (केवल कथक हेतु), एवं पीएच.डी. तक शिक्षण की व्यवस्था है। भारत देश के साथ विदेश के विद्यार्थी भी इस विश्वविद्यालय से कथक नृत्य की शिक्षा प्राप्त करने आते है। जिनमें श्रीलंका, नेपाल, अफगानिस्तान, थाईलैण्ड, रूस आदि देशों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार जहाँ एक ओर छत्तीसगढ़ राज्य में विविध जातियों, विविध त्यौहारों एवं अन्य धार्मिक एवं सामाजिक अवसरों पर लोक नृत्य प्रचलित है, वहीं छत्तीसगढ़ में शास्त्रीय नृत्य (कथक) को भी पर्याप्त प्रश्रय दिया गया। इस आधार पर यह कहना आवश्यक है, कि छत्तीसगढ़ में जहाँ एक ओर लोक–नृत्यों की सम्पन्न परम्परा रही है, वहीं दूसरी ओर कथक जैसे शास्त्रीय नृत्य की घरानेदार एवं संस्थागत रूप में शिक्षा की व्यवस्था को भी पर्याप्त प्रश्रय एवं सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ है। लोककलाओं के साथ–साथ भाषा–साहित्य के क्षेत्र में भी यह प्रदेश विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। लोककलाओं के अतिरिक्त शास्त्रीय कलाओं को भी छत्तीसगढ़ में फलने–फूलने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ।

रायगढ़ के राजा चक्रधर सिंह ने अपनी रुचि, रचनात्मकता और कलाप्रवीणता का परिचय देते हुए जहाँ कथक नृत्य के घराने की नींव रखी, वहीं शास्त्रीय गायन, वादन और साहित्य के क्षेत्र में भी अतुलनीय योगदान दिया । दूसरी ओर खैरागढ़ के राजा वीरेन्द्र बहादुर सिंह एवं रानी पद्मावती देवी द्वारा अपने राजमहल 'कमल विलास पैलेस' को विश्वविद्यालय भवन हेतु दान दिया गया, जहां संस्थागत शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत कथक नृत्य की शिक्षा के साथ–साथ लोक–नृत्य की शिक्षा भी प्रारंभ की गई। यह गौरव का विषय है, कि प्राचीन छत्तीसगढ़ के दो रजवाड़े कथक नृत्य के क्षेत्र में घरानेदार (गुरु शिष्य परम्परा) तथा आधुनिक संस्थागत शिक्षा पद्धति के लिये प्रसिद्ध हुए। यह प्रसिद्धि न केवल भारत तक ही सीमित रही है, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी स्थापित हुई।

## संदर्भ सूची


1. गहरवार, डॉ.नीता. भारतीय संस्कृति में नृत्य", बी.आर.रिदम्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृ.174
2. मोहम्मद, प्रोफेसर शरीफ, लेख : लोकनृत्य एवं बदलता परिवेश, "कला–वैभव", संयुक्तांक 10–11, वर्ष 2000–2001, इं.क.सं.वि.वि., खैरागढ़, पृ.110
3. केशरवानी, अश्विनी का लेख – छत्तीसगढ़ के लोक नृत्य, http://www.abhivyakti-hindi.org/snibandh/sanskriti/chhatisgarhkeloknritya.htm
4. मोहम्मद, प्रोफेसर शरीफ, लेख : लोकनृत्य एवं बदलता परिवेश, "कला–वैभव", संयुक्तांक 10–11, वर्ष 2000–2001, इं.क.सं.वि.वि., खैरागढ़, पृ.112
5. आज़ाद, पं.तीरथ राम, "कत्थक ज्ञानेष्वरी", नटेश्वर कला मंदिर, नई दिल्ली, पृ.425
6. आज़ाद, पं.तीरथ राम, "कत्थक ज्ञानेष्वरी", नटेश्वर कला मंदिर, नई दिल्ली, पृ.425
7. सिंह, डॉ.मांडवी, "भारतीय संस्कृति में कत्थक परम्परा", पृ.109